मेरा कृतज्ञ हृदय

सिद्धयोगियों द्वारा बताए गए कृतज्ञता के उनके अनुभव

श्रीगुरुमाई की एक सिखावनी जिसे मैंने हमेशा अपने हृदय के बिलकुल निकट सँजोकर रखा है, वह कृतज्ञता की शक्ति के विषय में है।

अनेक वर्षों से मैंने अपना एक अभ्यास बना लिया है, वह है, हर दिन अपने जर्नल-लेखन द्वारा कृतज्ञता व्यक्त करना। हर रोज़ मैं अपने जर्नल में उस दिन की ऐसी इक्कीस चीज़ों के विषय में लिखता हूँ जिनके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। पन्द्रह वर्ष हो चुके हैं, मैं इस अभ्यास को करता आया हूँ, और आज भी ऐसा होता है कि जब-जब मैं अपने इस अभ्यास पर नज़र डालता हूँ तो निस्सन्देह विस्मय से भर जाता हूँ। एक सामान्य-से प्रतीत होने वाले दिन में भी लगभग चालीस अद्‌भुत चीज़ें हो सकती हैं जो मुझे हर्ष से भर देती हैं [हालाँकि मेरा उद्देश्य होता है कि मैं हर रोज़ इक्कीस चीज़ों के बारे में लिखूँ, तथापि अकसर होता यह है कि मेरे पास और भी बहुत कुछ होता है जिसके बारे में मैं लिख सकता हूँ, और तब तक लिखता रहता हूँ जब तक मुझे ऐसा महसूस नहीं होता कि मैंने उसे पूरा कर लिया है और अब मैं लिखना समाप्त करूँ]। किसी ऐसे दिन पर जो वास्तव में 'स्वर्णिम दिन' लगता है—जब मैं समय निकालकर उन सब विशेष चीज़ों के बारे में लिखता हूँ जो उस दिन घटित हुई हों, तब मुझे लगता है कि उस *पूरे-के-पूरे* दिन को ही अपनी लेखनी द्वारा यादगार बनाकर मैं ऐसी रचना कर सकता हूँ कि आगे चलकर पुनः-पुनः उसे याद कर सकूँ।

मेरा यह अनुभव रहा है कि जागरूकता के साथ कृतज्ञता का अभ्यास करने से, चीज़ों को देखने का मेरा नज़रिया बदल गया है। मैं ऐसी चीज़ों पर ग़ौर करने के लिए समय निकालता हूँ जिन्हें एक बार देखने पर शायद मैं दोबारा न देखता। उदाहरण के लिए, जब एक गिलहरी अपने मुँह में फलियाँ लेकर पेड़ पर दौड़ती है तो यह दृश्य—जो अकसर अनदेखा रह सकता है—मन को मोह सकता है।

लगभग सात वर्ष पूर्व, जब मैंने श्री मुक्तानन्द आश्रम में एक स्टाफ़ सदस्य के रूप में सेवा करना आरम्भ किया था, तब मैं कृतज्ञता की अभिव्यक्तियों की अपनी लेखन-शैली में बदलाव करने लगा। अपनी अभिव्यक्तियों को मैं पत्रों के रूप में लिखने लगा। इन पत्रों को मैं देवी महालक्ष्मी के प्रति सम्बोधित करता और इनमें मैं तारीख़ और हस्ताक्षर शामिल कर उन्हें पूर्ण करता। मैं देवी को "सौभाग्य" नाम से सम्बोधित करता जो कि उनका एक नाम है। जब मैं इसे करता तो मुझे महसूस होता कि मेरे जीवन में मौजूद यह अच्छाई देवी का ही एक रूप है और मैं इसी अच्छाई की अभिस्वीकृति कर इसके लिए कृतज्ञता व्यक्त कर रहा हूँ।

मैं जिन बातों के लिए कृतज्ञ हूँ, उन्हें अभिव्यक्त करते हुए मेरी पहली पंक्ति का आरम्भ होता है, इस सच्चाई के साथ कि मेरे जीवन में श्रीगुरुमाई हैं। इस पहली पंक्ति को लिखने का मेरा कोई निश्चित तरीक़ा नहीं है। उस विशिष्ट दिन पर मैं जो भाव महसूस कर रहा होता हूँ, उसके सार को मैं हर दिन अलग-अलग तरह से अभिव्यक्त होने देता हूँ, जैसे :

> मैं कृतज्ञता अर्पित करता हूँ कि मेरे जीवन में गुरुमाई जी की सिखावनियाँ हैं।
>
> मैं इस बात के लिए कृतज्ञ हूँ कि मैं इस संसार में रहता हूँ जहाँ यदि मैं अपनी श्रीगुरु को नामसंकीर्तन गाते हुए उनकी आवाज़ को सुनना चाहूँ तो आसानी से मैं एक नामसंकीर्तन की रिकॉर्डिंग चला सकता हूँ और बिलकुल उनके साथ-साथ संकीर्तन गा सकता हूँ।
>
> आज मैं कितना धन्य हो गया कि मुझे श्रीगुरुमाई के दर्शन हुए।

इस दैनिक अभ्यास के समापन पर, मैं अपने कोट की जेब में हृदय के आकार में तराशे गए विविध प्रकार के कंकड़ रखने लगा जिन्हें मैं नियमित तौर पर बदलता रहता। हर रोज़ जब मुझे अपनी जेब में उस कंकड़ का स्पर्श महसूस होता तो मैं अपने आपको स्मरण दिलाता कि मैं उस विशिष्ट क्षण में मन ही मन किसी एक चीज़ के लिए धन्यवाद दूँ। और फिर, हर दिन जब मैं अपनी कृतज्ञता की सूची के समापन पर आता तो मैं इस कंकड़ को जेब से निकालकर अपनी पूजा-वेदी में रखी पादुकाओं पर रखता जो कि इस बात का प्रतीक होता कि मैं श्रीगुरु को अपना हृदय अर्पित कर रहा हूँ।

पिछले अक्टूबर माह में, एक दिन सुबह, मैं अनुग्रह बिल्डिंग की नीचे वाली लॉबी में से गुज़र रहा था, और तब मुझे एक हलकी-सी क्लिक आवाज़ सुनाई दी। दरवाज़ा खुला और गुरुमाई जी ने उस लॉबी में प्रवेश किया।

मुझे अब भी याद है, शारदीय सुबह की उस रोशनी में, मूँगिया रंग के उनके रेशमी वस्त्र चमचमा रहे थे। गुरुमाई जी ने वहाँ की बड़ी-सी खिड़कियों से बाहर देखा। वह पल ऐसा था कि सब कुछ अत्यन्त स्थिर व शान्त लग रहा था, फिर भी ऐसा महसूस हो रहा था कि सब कुछ गतिशील है।

मैंने मुस्कराकर गुरुमाई जी का अभिवादन किया, और वे भी मुझे देखकर मुस्कराईं।

किसी चीज़ को निकालने के लिए अपनी जेब में हाथ डालते हुए उन्होंने कहा, "*तुम्हें* यहाँ देखकर मुझे खुशी हुई। मैंने आज अपने आपसे कहा था कि मैं जिस पहले व्यक्ति को नीचे की लॉबी में देखूँगी, उसे यह दूँगी।"

मैंने देखा कि उन्होंने तुरन्त जेब में से निकलकर अपने हाथों में थामा हुआ है, चमचमाता हुआ, गुलाबी रंग का एक स्फटिक जो हृदय के आकार में बारीकी से तराशा हुआ था। मैंने इस प्रसाद को ग्रहण करने के लिए अपने दोनों हाथ बढ़ाए। आज तक मुझे जितने भी उपहार मिले थे, उनमें यह उपहार सबसे अनमोल था!

बेहद खुशी के साथ मैंने कहा, "बहुत, बहुत धन्यवाद गुरुमाई जी। मैं इसे हमेशा सँजोकर रखूँगा।"

गुरुमाई जी ने अपना सिर हिलाया और फिर सिर को एक ओर झुकाकर कहा, "क्या यही वह जगह नहीं है जहाँ हम पहली बार मिले थे?"

मैं कह उठा : "जी हाँ, जी हाँ! नीचे वाली लॉबी के बाहर ही मैंने पहली बार आपके प्रत्यक्ष दर्शन किए थे।" इस बात ने मेरे हृदय को गहराई से छू लिया कि गुरुमाई जी को वर्षों पहले हुई हमारी मुलाक़ात का वह पल याद था जब मैं पहली बार श्री मुक्तानन्द आश्रम आया था, और हम अभी जहाँ खड़े थे, उसके कुछ ही क़दम दूर प्रांगण में मैं उनसे मिला था।

"और अब हमारे पास यहाँ याद रखने के लिए एक और चीज़ है," गुरुमाई जी ने मुस्कराते हुए आगे कहा और फिर उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया।

मैंने तुरन्त हृदय के आकार के उस स्फटिक को अपने जैकेट की ऊपर वाली जेब में रख लिया और पूरे दिन उसे वहीं रखा, अपने हृदय के नज़दीक; बीच-बीच में मैं उसे निकालकर देखता रहता, यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह सचमुच मेरे पास है और यह क्षण बस एक सपना तो नहीं है!

वह पत्थर स्वयं इतना ख़ूबसूरत था, और सबसे अनोखी बात यह थी कि उसमें से अत्यन्त मनमोहक सुगन्ध आ रही थी। जीवन में पहली बार मैंने किसी पत्थर में से सुगन्ध आते हुए महसूस की थी, ऐसा लग रहा था कि वह पत्थर सुगन्ध से ओतप्रोत है।

उस शाम जब मैं घर पहुँचा तब मैंने तुरन्त समय निर्धारित किया ताकि मैं अपने जीवन में इस प्रसाद का स्वागत करूँ। मैंने उसे अपनी पूजा-वेदी पर रखा और इसके साथ आने वाले गुरुमाई जी के आशीर्वादों को पूरे हृदय से अंगीकार करने के लिए एक स्तवन गाया। मेरे लिए इस पत्थर का मिलना 'चिन्तामणि' मिलने जैसा था जिसका उल्लेख भारतीय शास्त्रों में मिलता है कि यह इच्छा पूर्ण करने वाली मणि है।

पूजा के पास बैठे हुए, मैंने गुरुमाई जी की उस सिखावनी को निहारा जो मैंने फ़्रेम में बनवाकर दीवार पर टाँगी थी। यह सिखावनी उनकी पुस्तक, 'अन्तर-शुद्धि के सोपान' से है। यह एक ही पंक्ति है, और इसमें कहा गया है :

तुम अपने हृदय को जहाँ भी समर्पित करते हो, तुम्हें वही मिल जाता है।

मेरी आँखें भर आईं। मैं आपको बताऊँ कि यह सिखावनी मेरी पूजा में बचपन से लगी है। यह एक ग्यारह वर्ष के बालक की लिखाई में लिखी हुई है और मुझे याद है कि बचपन में मैं प्रार्थना करता कि मैं गुरुमाई जी की सेवा करूँ। सदैव यही मेरी प्रबल इच्छा रही है—इतनी गहरी कि एक बार यह सिखावनी पढ़ने के बाद मैं हृदयाकार के चित्र बनाने लगा, उन्हें काटकर अपनी पूजा पर सजाने लगा। ये इस बात के प्रतीक थे कि मैं अपना हृदय अपनी श्रीगुरु के चरणों में अर्पित कर रहा हूँ क्योंकि यही वह स्थान है जहाँ मैं हमेशा रहना चाहता था। और इसी गहरी ललक व प्रार्थना से उदित हुआ था, कृतज्ञता के कंकड़ अपनी जेब में रखने का मेरा छोटा-सा अनुष्ठानरूपी नित्य अभ्यास।

तो, उस दिन जब मुझे गुरुमाई जी से हृदयाकार का वह स्फटिक मिला तब अपनी पूजा के सामने बैठा हुआ मैं अपने आप को रोक न सका; मैं रो पड़ा और रोता ही रहा; हृदय की गहराई से उमड़ते भाव से सिक्त मेरे आँसू झरते रहे—कृतज्ञता का भाव जो इतना गहरा था कि मैं शायद ही उसे कोई नाम दे पाऊँ।

एक ओर यह थी मेरी कहानी, अपनी श्रीगुरु को अपना हृदय अर्पित करने की और दूसरी ओर, मेरी श्रीगुरु भी अपने हृदय का उपहार लिए उस दिन नीचे वाली लॉबी में आईं और जो कोई व्यक्ति उस स्थान व समय में उन्हें मिलने वाला था उसे वे वह उपहार देना चाहती थीं। यह मेरे लिए बिलकुल स्पष्ट था कि यही है जो श्रीगुरु करते हैं। वे सतत साधकों को अपना प्रेम देने के अवसर ढूँढ़ती हैं। अपने हर एक भक्त को अपना प्रेम देने के लिए वे माध्यम खोजती हैं और विभिन्न माध्यमों द्वारा अपने भक्त के पास आकर उसे अपना प्रेम देती हैं।

गुरुमाई जी के प्रेम ने मेरे जीवन को रूपान्तरित किया है और कर रहा है। गुरुमाई जी का प्रेम पाकर उस शाम मैं अपनी हाँथों की अंजलि में उस स्फटिक को थामे रहा, कृतज्ञता के आसुओं को अपनी आँखों से बहने दिया।

उस स्फटिक को मैं प्यार से चिन्तामणि कहने लगा। अपने जीवन में उसका स्वागत करने के कुछ समय बाद कृतज्ञता के मेरे अभ्यास में परिवर्तन आया। मैं जिन चीज़ों के लिए कृतज्ञ हूँ, उन्हें लिखने

के स्थान पर अब मैं इस मणि को अपने हाथों में लिए, हर चीज़ के प्रति अपनी असीम कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। वह हृदय स्वयं शक्तिपूरित रूप से मुझे उस पहली बात का स्मरण कराता है जिसके लिए मैं सतत धन्यवाद देता हूँ : गुरुमाई जी का प्रेम।

मेरे पलंग के पास, सिरैमिक की एक सुन्दर तश्तरी में चिन्तामणि आसीन है और उसमें से आज भी वही सुमधुर सुगन्ध आती है मानो कि वह मुझे याद दिला रही हो—कि निस्सन्देह—श्रीगुरु का प्रेम पाने के बाद कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए कारण तो हमेशा होता ही है।

~ श्री मुक्तानन्द आश्रम के एक स्टाफ़ सदस्य

© २०२१ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।